DSSSB TGT & PGT

दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड

ROJGAR With ANKIT

Part-B

SCHOLAR BATCH

संस्कृत

भाषाओं का वर्गीकरण

LIVE 22-04-2024 05:00 PM

भाषाओं का आकृतिमूलक वर्गीकरण

(Morphological Classification of Languages)

(१) विश्व की भाषाओं के दो प्रकार के वर्गीकरण हैं –

- आकृतिमूलक
- पारिवारिक

आकृतिमूलक वर्गीकरण के दो भेद हैं —

- ✓ योगात्मक
- ✓ अयोगात्मक

(२) अयोगात्मक भेद एक ही प्रकार का है।

योगात्मक के तीन भेद हैं —

- ✓ श्लिष्ट (Inflecting),
- ✓ अश्लिष्ट (Agglutinating),
- ✓ प्रश्लिष्ट (Incorporating)।

योगात्मक भाषाएँ प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बनी हुई होती हैं।

विश्व की भाषाएँ

- विश्व में कितनी भाषाएँ बोली जाती हैं, यह प्रायः अनुमान का विषय है।
- कुछ विद्वानों ने गणना करके इनकी संख्या २७६६ बताई है।
- इस संख्या को आनुमानिक रूप से ३००० (तीन सहस्र) माना जा सकता है। इसमें विश्व की सभी भाषाओं और बोलियों का संग्रह है।

विश्वभाषाओं के वर्गीकरण का आधार

वर्गीकरण से विषय का सूक्ष्मता से ज्ञान होता है और उसके समझने में सरलता होती है। भाषाविज्ञान में विश्वभाषाओं के दो प्रकार से वर्गीकरण किए गए हैं-

१. आकृतिमूलक वर्गीकरण (Morphological Classification)

२. पारिवारिक वर्गीकरण (Genealogical Classification)

१. आकृतिमूलक वर्गीकरण – आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार है—पदों और वाक्यों की रचना। पद किस प्रकार बनते हैं और वाक्यों की रचना किस प्रकार होती है, इस आधार पर किए जाने वाले वर्गीकरण को आकृतिमूलक कहते हैं। Morph (मार्फ-पद), Morphology (मार्फोलॉजी- पदरचना) पर आश्रित होने से इसे Morphological classification (पदरचनात्मक वर्गीकरण) कहते हैं। इस वर्गीकरण को Syntax (सिन्टैक्स - वाक्यरचना) के आधार पर होने से Syntactical (वाक्य-रचनात्मक) और Type (टाइप-

रूप) के आधार पर होने से Typical (टिपिकल - रूपात्मक) भी कहते हैं।

जिन भाषाओं में आकृति (आकार, पदरचना और वाक्यरचना) की दृष्टि से समानता होती है, उन्हें एक वर्ग में रखा जाता है। आकृति-मूलक वर्गीकरण में रचना-तत्त्व की मुख्यता रहती है। इसमें शब्द के बाह्यरूप पर ध्यान दिया जाता है।

२. पारिवारिक वर्गीकरण – पारिवारिक वर्गीकरण में रचनातत्त्व के साथ ही अर्थतत्त्व पर भी ध्यान दिया जाता है। जिन भाषाओं में रचना-साम्य के साथ ही अर्थ-तत्त्व की दृष्टि से भी समानता होती है, उन्हें एक पारिवारिक वर्ग में रखा जाता है।

दोनों वर्गीकरण में मुख्य अन्तर यह है कि आकृतिमूलक में शब्दतत्त्व और रचना - तत्त्व मुख्य हैं। इसमें अर्थ पर ध्यान नहीं दिया जाता। पारिवारिक में रचना- तत्त्व के साथ ही अर्थ -साम्य या अर्थतत्त्व पर ध्यान रखना अनिवार्य है । इस प्रकार दोनों का भेद है-

(क) आकृतिमूलक वर्गीकरण — शब्द - प्रधान, रचनातत्त्व मुख्य ।

(ख) पारिवारिक वर्गीकरण——अर्थ- प्रधान, रचना-तत्त्व + अर्थतत्त्व।

पारिवारिक वर्गीकरण को वंशानुक्रम पर आधारित होने से Genealogical (वंशानुक्रमिक) (Genea = वंश) और भूगोल एवं इतिहास पर निर्भर होने से Historical (ऐतिहासिक) कहते हैं। एक परिवार एक भौगोलिक क्षेत्र में फैला होता है।

इस वर्गीकरण का श्रेय प्रो० श्लेगल (F. Schlegel) को है। उन्होंने सर्वप्रथम भाषाओं को दो वर्गों में बाँटा था। प्रो० बोप (F. Bopp) ने तीन

वर्ग किए। ग्रिम (Grimm) और श्लाइशर (Schleicher) ने भी तीन वर्गों को प्रकारान्तर से माना। पॉट (A. F. Pott) ने इनके चार वर्ग बनाए । वास्तविक रूप में भाषाओं के २ वर्ग बनते हैं –

१. अयोगात्मक, २. योगात्मक। योगात्मक के ३ भेद होने से ४ वर्ग होते हैं।

आकृतिमूलक वर्गीकरण

इसको निम्नलिखित वंशवृक्ष के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है

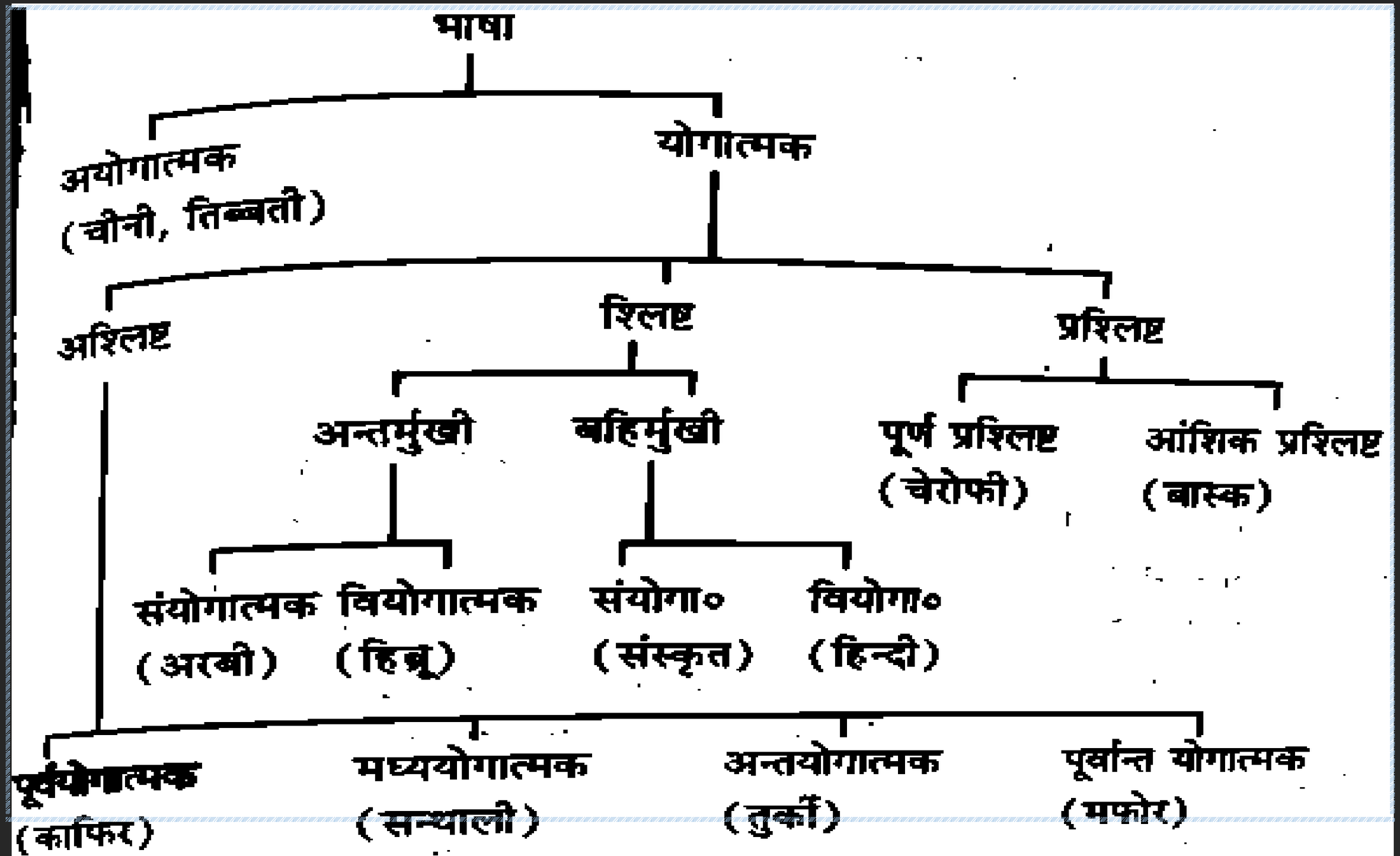
भाषा
अयोगात्मक
(चीनी, तिब्बती)
योगात्मक
अश्लिष्ट
श्लिष्ट
प्रश्लिष्ट
अन्तर्मुखी
बहिर्मुखी
पूर्ण प्रश्लिष्ट
(चेरोफी)
आंशिक प्रश्लिष्ट
(बास्क)
संयोगात्मक
(अरबी)
वियोगात्मक
(हिब्रू)
संयोगा०
(संस्कृत)
वियोगा०
(हिन्दी)
पूर्वयोगात्मक
(काफिर)
मध्ययोगात्मक
(सन्थाली)
अन्तयोगात्मक
(तुर्की)
पूर्वान्त योगात्मक
(मफोर)

आकृतिमूलक वर्गीकरण का स्पष्टीकरण

आकृतिमूलक वर्गीकरण को मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा जाता है -

१. अयोगात्मक

२. योगात्मक ।

१. अयोगात्मक भाषाएँ (Isolating or Root Languages) – अयोगात्मक उन भाषाओं को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय या अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का संयोग नहीं होता है। प्रत्येक शब्द

स्वतन्त्र होता है। प्रत्येक शब्द की स्वतन्त्र या अलग सत्ता होने से इसे Isolating (पृथक्-पृथक्) कहते हैं। इसमें प्रत्येक शब्द प्रकृति या मूल के तुल्य होता है, अत: इसे Root (धातु, मूल) Language कहते हैं। इन भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय जैसी चीज नहीं होती।

२. योगात्मक भाषाएँ (Agglutinative Languages) — योगात्मक भाषाएँ उनको कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय या अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का संयोग रहता है। प्रकृति (अर्थतत्त्व) और प्रत्यय

(सम्बन्धतत्त्व) का संयोग विभिन्न प्रकार से हो सकता है, अतः योगात्मक भाषाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है-

(क) अश्लिष्ट (प्रत्यय-प्रधान) भाषाएँ (Agglutinative languages)

(ख) श्लिष्ट (विभक्ति-प्रधान) भाषाएँ (Inflectional languages)

(ग) प्रश्लिष्ट (समास-प्रधान) भाषाएँ (Incorporative languages)

(क) अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ — अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय इस प्रकार जुड़ा हुआ होता है कि दोनों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रकार के जोड़ को 'तिल-तण्डुल - न्याय' (तिल और चावल की तरह) कह सकते हैं। मिले हुए तिल-चावल में तिल और चावल अलग-अलग दिखाई देते हैं। इसके चार भाग किए गए हैं-

१. पूर्वयोगात्मक (जहाँ प्रत्यय या सम्बन्धतत्त्व प्रकृति से पहले लगता है)

२. मध्ययोगात्मक (जहाँ प्रत्यय प्रकृति के बीच में जोड़ा जाता है)

३. अन्तयोगात्मक (जहाँ प्रत्यय प्रकृति के अन्त में जोड़ा जाता है)

४. पूर्वान्त योगात्मक (जहाँ प्रत्यय प्रकृति के पहले और अन्त में जुड़ता है)

(ख) श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ – श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय घनिष्ठता से मिले होते हैं। दोनों इस प्रकार मिले होते हैं कि प्रकृति और प्रत्यय को अलग-अलग बताना संभव नहीं होता है। प्रत्यय की झलक अवश्य रहती है। ऐसे संयोग को 'नीर-क्षीर-न्याय' (दूध- पानी की तरह मिलना) कह सकते हैं । प्रकृति और प्रत्यय के घनिष्ठता से मिलने से प्रकृति (अर्थतत्त्व) में कुछ परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। इसके दो भाग किए गए हैं और उनमें भी प्रत्येक के दो-दो भाग हैं-

(१) अन्तर्मुखी श्लिष्ट — इसमें प्रत्यय (सम्बन्धतत्त्व) प्रकृति (अर्थतत्त्व) के बीच में घुलमिल कर रम जाते हैं । इसके दो भेद हैं-

(क) संयोगात्मक (Synthetic) — जिनमें शब्दों में अलग से सहायक सम्बन्धतत्त्व लगाने की आवश्यकता नहीं होती है।

(ख) वियोगात्मक (Analytic)- जिनमें शब्दों में अलग से सहायक सम्बन्धतत्त्व लगाए जाते हैं ।

(२) बहिर्मुखी श्लिष्ट — इसमें प्रत्यय (सम्बन्धतत्त्व) प्रकृति (अर्थतत्त्व) के बाद में या अन्त में लगते हैं । भारोपीय भाषाएँ संस्कृत आदि इसी कोटि में आती हैं। इसके भी दो भेद हैं-

(क) संयोगात्मक — जिसमें सम्बन्धतत्त्व प्रकृति (अर्थतत्त्व) के साथ जुड़ा होता है । जैसे—संस्कृत के सुप् तिङ् आदि ।

(ख) वियोगात्मक – जिसमें सम्बन्धतत्त्व प्रकृति से अलग लगाया जाता जैसे—हिन्दी आदि में कारक - चिह्न, सहायक क्रिया आदि

(ग) प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ – प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति अर्थतत्त्व और प्रत्यय (सम्बन्धतत्त्व) इतने अधिक घनिष्ठ रूप में मिले होते हैं कि दोनों को न अलग पहचाना जा सकता है और न दोनों को एक-दूसरे से अलग ही किया जा सकता है। इस संयोग को 'दधि घृत-न्याय' (दही में घी की तरह मिले हुए) कह सकते हैं। इसके दो भेद किए गए हैं-

(१) पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक — इसमें अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का इतना अधिक घनिष्ठ मेल हो जाता है कि पूरे वाक्य का प्रायः एक शब्द बन जाता है। वह एक शब्द पूरे वाक्य का अर्थ देता है। इसमें आने वाले शब्दों का कुछ-कुछ अंश लेकर एक ऐसा शब्द बना दिया जाता है, जिसमें सभी शब्दों का थोड़ा प्रतिनिधित्व रहता है। यह शब्द वाक्य के तुल्य व्यवहृत होता है । इसे 'पूर्ण समास प्रधान' भी कहते हैं।

(२) आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक - इसमें सर्वनाम और क्रिया इस प्रकार मिल जाती है कि क्रिया का स्वरूप नगण्य हो जाता है और वह सर्वनाम की पूरक हो जाती है। इसमें वाक्य के सभी अवयव संज्ञा, विशेषण आदि भी सम्मिलित नहीं होते, इसलिए इसे 'आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक' कहते हैं। इसे 'अंशतः समास-प्रधान' भी कहते हैं।

इस प्रकार आकृतिमूलक वर्गीकरण को चार वर्गों में प्रस्तुत किया जाता है-

(१) अयोगात्मक (स्वतन्त्र शब्दात्मक) भाषाएँ (Isolating languages

(२) अश्लिष्ट योगात्मक (प्रत्यय-प्रधान) भाषाएँ (Agglutinative language

(३) श्लिष्ट योगात्मक (विभक्ति - प्रधान) भाषाएँ (Inflectional language

(४) प्रश्लिष्ट योगात्मक (समास - प्रधान) भाषाएँ (Incorporative languages)

अयोगात्मक भाषाएँ (Isolating Languages)

अयोगात्मक भाषा उसको कहते हैं, जिसमें अर्थतत्त्व (प्रकृति) और (प्रत्यय) का कोई संयोग नहीं होता है। इसमें प्रत्येक शब्द स्वतन्त्र होता है । शब्दों में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता है। शब्दों की स्वतन्त्र सत्ता के कारण ऐसी भाषाओं को Isolating (पृथक्, निरवयव) कहते हैं। शब्द-स्वातन्त्र्य के कारण इन्हें Root (धातु, मूल) Languages भी कहते हैं । वाक्य में प्रयुक्त होने पर ये शब्द अपने मूल रूप में बने रहते हैं। 'अयोग' का अर्थ है- अ-नहीं,

योग-मिलना, जुड़ना, अर्थात् जिस भाषा में प्रकृति - प्रत्यय आदि का कोई मेल न हो। ये भाषाएँ 'स्थान - प्रधान' हैं। भाषा में कर्ता, क्रिया, कर्म आदि का स्थान निश्चित होता है। एक ही शब्द स्थान -भेद से कर्ता, क्रिया या कर्म हो सकता है। इसको Positional (स्थान - प्रधान), Inorganic (निरवयव) भी कहा जाता है।

(क) अयोगात्मक वर्ग की भाषाएँ-

इस वर्ग की मुख्य प्रतिनिधि भाषा 'चीनी' है। इसके अतिरिक्त स्यामी, तिब्बती, बर्मी, अनामी, सूडानी (अफ्रीका के सूडान देश की भाषा) आदि भाषाएँ इस वर्ग में हैं।

(ख) अयोगात्मक भाषाओं की विशेषताएँ-

(१) इन भाषाओं का व्याकरण नहीं होता ।

(२) 'शब्दक्रम' या 'पदक्रम' का विशेष महत्त्व होता है।

(३) स्वर (सुर, Tone, लहजा) के भेद से अर्थ-भेद हो जाता है।

(४) निपात (Particle, सम्बन्धसूचक अव्यय) से भी शब्द - रचना और वाक्य - रचना में सहायता ली जाती है।

(५) शब्दों में परिवर्तन नहीं होता। सम्बन्धतत्त्व लगने पर अन्तर नहीं आता ।

(६) सम्बन्धतत्त्व का बोध सम्बन्धतत्त्व- बोधक शब्दों को लगाकर या स्थान- विशेष पर रखकर कराया जाता है।

(ग) अयोगात्मक भाषाओं की निजी विशेषताएँ-

(१) चीनी भाषा – स्थान और स्वर- प्रधान ।

(२) सूडानी— स्थान - प्रधान

(३) अनामी - स्वर - प्रधान ।

(४) बर्मी, स्यामी, तिब्बती — निपात - प्रधान

(घ) शब्द - निर्माण एवं वाक्य-रचना-

शब्द + सम्बन्धतत्त्व लगाकर वचन, कारक आदि बताए जाते हैं। धातु + भूतकाल आदि के सूचक सम्बन्धतत्त्व लगाकर भूतकाल आदि अर्थ बताया वाक्य में सामान्य पद-क्रम है— कर्ता, क्रिया, कर्म । विशेषण कर्ता से पूर्व लगते हैं । विशेषण कर्ता के बाद रखने पर विधेय (Predicate) का काम करते हैं । जैसे वो (Wo, मैं), नीं (Ni, तू), था (Ta, वह), ति (Ti, षष्ठी, सम्बन्ध - कारक), मेन (Men, बहुवचन) ।

वो (मैं)

वो - मेन (हम)

वो – ति (मेरा)

वो – मेन – ति (हमारा)

नी (तू)

नी – मेन (तुम)

ति (हमारा)

नी – ति (तेरा)

नी-मेन-ति (तुम्हारा)

था (वह)

था-मेन (वे)

था -ति (उसका)

था -मेन-ति (उनका)

इङ् - को - जेन (भारतीय व्यक्ति, इङ्-इण्डिया, को- देश, जेन-आदमी)

मे-को-जेन (अमेरिकन, मे-अमेरिका, को- देश, जेन-आदमी)

श्येन शेंग कुई शिंग = श्रीमन्, आपका क्या शुभ नाम है? (श्येन शेंग कुई = शुभ, शिंग = नाम, वंशनाम)

वो शिंग ली = मेरा नाम ली है। (वो - मैं)

चिंग त्सो, चिंग त्सो = कृपया पधारिए। (चिंग = कृपया, त्यो = बैठना)

ली श्येन शेंग हाओ या = श्रीमन् ली, आप कैसे हैं? (हाओ या = कुशल तो हैं, कैसे हैं ।)

ली श्येन शेंग लाई ला = श्रीमान् ली, आ गए। (लाई = आना, ला = भूतकाल)

(ङ) स्थानभेद से अर्थ-भेद-

१. ता - जेन (बड़ा आदमी; ता -बड़ा, जेन - आदमी)

जेन - ता (आदमी बड़ा है)

२. वो - ता- नी (मैं मारता हूँ तुझे; वो- मैं, ता - मारना, नी-तृ)

नी-ता- वो (तू मारता है मुझे)

हिन्दी, अंग्रेजी में प्रश्नवाचक पहले लगता है, परन्तु चीनी में प्रश्नवाचक अन्त में लगता है।

वाङ् श्येन शेंग त्साई ज्या मा = क्या श्रीमान् वाङ् घर पर हैं?

(श्येन शेंग = श्रीमान्, त्साई = हैं, रह रहे हैं, ज्या- घर, मा- क्या

अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ (Agglutinative Languages)

अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं को Agglutinative languages कहते हैं । यह शब्द लैटिन के Gluten (ग्लुटेन, चूना), Glutinare (ग्लुटिनेयर, चूने से जोड़ना या चिपकाना) शब्द से बना है। इस शब्द से इस प्रकार की भाषाओं की स्थिति का ज्ञान होता है। जैसे— चूने से ईंटों को जोड़ा जाता है और ईंटें साफ दिखाई पड़ती हैं, उसी प्रकार अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में अर्थतत्त्व (प्रकृति) और सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि इनको स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस प्रकार के जोड़ (योग) को पूर्णतया न जुड़े होने से

'अश्लिष्ट' और जुड़े होने के कारण योगात्मक' कहा जाता है। इस जोड़ को 'तिल-तण्डुल - न्याय' (तिल-चावल के तुल्य) कहा जा सकता है। जैसे- संस्कृत और हिन्दी में - मृदुता – मृदु + ता, मनुष्यत्व — मनुष्य + त्व, सर्वत्र - सर्व + त्र, तूने - तू + ने, होगा - हो + गा, जाऊँगा — जा + ऊँ + गा ।

तुर्की (Turkish) भाषा इस वर्ग की प्रतिनिधि भाषा है। शब्द और प्रत्यय को ईंटों की तरह जमाते चले जाइये। कर्म, करण आदि के बोधक प्रत्यय एकवचन और बहुवचन में एक ही होते हैं । बहुवचन सूचित करने के लिए अलग शब्द हैं। कहीं-कहीं पर प्रत्यय लगने पर

प्रकृति (अर्थतत्त्व) में कुछ ध्वनि - परिवर्तन भी होता है, पर वह नगण्य है। जैसे – Ev (एव, घर), Ler (लेर, बहुवचन - सूचक) के रूप-

	एकवचन	बहुवचन	
कर्ता—Ev	_(एव्, घर)	Ev-ler	(एव्-लेर्)
कर्म—Ev-i	(एव्-इ, घर को)	Ev – ler -i	(एव्-लेर्-इ
संप्रदान – Ev – e	(एव्-ए, घर के लिए)	Ev-ler-i	एव्-लेर्-ए

अपादान-Ev-den	(एव्-डेन, घर से	Ev-ler-den	(एव्-लेर्-इन)
सम्बन्ध-Ev-in	(एव्-इन, घर का)	Ev-ler-in	(एव्-लेर्-इन)
अधिकरण-Ev-de	(एव्-डे, घर में)	Ev-ler-de	(एव्-लेर्-डे)

विभक्तियों का क्रम स्मरण रखने के लिए - x, इ, ए, डेन, इन, डे' सूत्र याद कर लेना पर्याप्त है। बहुवचन में ler (लेर) लगेगा। यहाँ एव्

में ए है, इसलिए ler (लेर) में e (ए) लगा । यदि शब्द में a (आ) होगा तो बहुवचन में lar (लार) में a लगेगा। कुछ अन्य उदाहरण ये हैं

El—— (एल्, हाथ), El-im (एल्-इम, मेरा हाथ)

El-im-de (एल् - इम् - डे, मेरे साथ में)

इस प्रकार की भाषाएँ हंगेरियन (Hungarian) और फिनिश (Finish) भी हैं। अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रत्यय या सम्बन्धतत्त्व कहीं अर्थतत्त्व (प्रकृति) से पहले लगता है, कहीं मध्य में, कहीं अन्त में और कहीं आगे-पीछे दोनों ओर । इसी आधार पर इनके चार भाग किए गए हैं — पूर्वयोगात्मक, मध्ययोगात्मक, अन्तयोगात्मक, पूर्वान्तयोगात्मक । इनके उदाहरण इस प्रकार हैं-

(क) पूर्व-योगात्मक (Prefix-agglutinative) — इसमें सम्बन्धतत्त्व या प्रत्यय शब्द से पूर्व लगता है। बांटू परिवार की काफिर और जुलू भाषाओं में इसके उदाहरण मिलते हैं— काफिर भाषा में —ति (हम), नि (वे, उन), कु (संप्रदान का चिह्न) । 'कु' पहले लगेगा-

कु-ति = हमको, कु + नि = उनको

जुलू भाषा में —'न्तु' (आदमी)। सम्बन्धतत्त्व- उमु (एकवचन), अब बहुवचन) पहले लगेंगे।

उमु + न्तु = एक आदमी, अब + न्तु = बहुत आदमी

जैसे अंग्रेजी में कहते हैं – To me — मुझको, With me—मेरे साथ, For him — उसके लिए

(ख) मध्य-योगात्मक (Infix-agglutinative) इसमें सम्बन्धतत्त्व शब्द के बीच में जुड़ता है। ऐसी भाषाएँ भारत में मुंडा - परिवार की 'सन्थाली' तथा हिन्द महासागर से अफ्रीका तक फैले हुए द्वीपों की भाषाएँ हैं । ये प्रायः दो अक्षरों वाली हैं। प्रत्यय या सम्बन्धतत्त्व दोनों अक्षरों के बीच में लगता है। जैसे— सन्थाली भाषा में मंझि (मुखिया)। प (बहुवचन - चिह्न), बीच में जुड़ेगा।

मंझि = मुखिया

मंपझि = मुखिये

इसी प्रकार — दल (मारना), प (परस्पर) बीच में लगेगा ।

दल = मारना, दपल = एक-दूसरे को मारना ।

(ग) अन्त-योगात्मक (Suffix-agglutinative) — इसमें सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) अन्त में जुड़ते हैं। ऊपर तुर्की भाषा के दिए गए उदाहरण इसके ही उदाहरण हैं। भारत की द्रविड़ परिवार की तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं में भी कारक - चिह्न अन्त में जुड़ते हैं। कन्नड़ में 'सेवक' शब्द के रूप निम्न प्रकार से चलेंगे। एक० में प्रत्यय में 'न' है, बहु० में न के स्थान पर 'र' ।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सेवक-नु	सेवक-रु
कर्म	सेवक-नन्नु	सेवक – रन्नु

करण	सेवक-निद	सेवक-रिंद
संप्रदान	सेवक-निगे	सेवक-रिगे
सम्बन्ध	सेवक-न	सेवक-र
अधिकरण	सेवक-नल्लि	सेवक-रल्लि

तेलगु आदि में 'वृक्ष' वाचक 'गुर्रम' और 'मर' के रूप एक० में।

में।

कारक	तेलुगु	तमिल	मलयालम	कन्नड़
कर्ता	गुर्रम्	मरम्	मरम्	मरम्
कर्म	गुर्रम्	मरम्	मरम्	मरमम्
संप्रदान	गुर्रम् उनकु	मर त्तिर्कु	मर त्तिन्नु	मर के
सम्बन्ध	गुर्रम् उ	मर त्तिन	मर त्तिन्द्रे	मर दा

(घ) पूर्वान्त्त योगात्मक (Prefix-suffix-agglutinative) – इस वर्ग की भाषाओं में सम्बन्ध-तत्त्व शब्द के पहले और बाद में दोनों ओर लगता है। जैसे—फ्रेंच में

निषेधार्थक Ne...pas (न .. पा) निषेध्य के पहले और बाद में लगता है। जैसे- Donnez-m-en (दोने माँ, मुझे कुछ दो), निषेधार्थक — — Ne men donnez pas (न माँ दोने पा, मुझे कुछ मत दो) । न्यूगिनी की 'मफोर' भाषा में इसके उदाहरण मिलते हैं।

म्नफ = सुनना, ज = मैं, उ = तू, तुझे। ज-म्नफ - उ = मैं सुनता हूँ तुझे (मैं तेरी बात सुनता हूँ)। इसमें ज (मैं) पहले जुड़ा और उ (तुझे) अन्त में जुड़ा ।

श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ (Inflectional Languages)

श्लिष्ट-योगात्मक भाषाओं में अर्थतत्त्व (प्रकृति) और सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) घनिष्ठता से मिले होते हैं। दोनों को स्पष्ट रूप से अलग-अलग देखा जा सकता है। अर्थतत्त्व में प्रत्यय के मिलने से कुछ विकार भी आ जाता है, परन्तु प्रत्यय को पहचाना जा सकता है। यह संयोग

'नीर-क्षीर-न्याय' (दूध- पानी - संयोग) कहा जा सकता है। अर्थतत्त्व में विकार के उदाहरण हैं—कृ + अन = करण, कृ + तव्य = कर्तव्य, भूत + इक = भौतिक, वेद + इक = वैदिक। अरबी में 'स-ल-म' से सलाम, सलीम, इस्लाम, मुस्लिम आदि । इन भाषाओं में Inflection (शब्द-रूप, धातुरूप) की प्रधानता होती है, अतः इन्हें _Inflectional (विभक्ति - प्रधान) भाषाएँ कहते हैं।

इस वर्ग में भारोपीय भाषाएँ, सेमेटिक (सामी) और हैमेटिक (हामी) भाषाएँ आती हैं। इस वर्ग की भाषाएँ संसार में सबसे अधिक उन्नत

हैं। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, रूसी, अवेस्ता, अंग्रेजी, हिन्दी आदि सभी इसी वर्ग में आती है।

इस वर्ग की भाषाओं के दो भेद किए जाते हैं – (क) अन्तर्मुखी, (ख) बहिर्मुखी । इन दोनों के भी दो भेद किए जाते हैं –

१. संयोगात्मक,

२ . वियोगात्मक ।

अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी विभाजन पर बहुत मतभेद है । अन्तर्मुखी में अरबी और बहिर्मुखी में संस्कृत प्रतिनिधि भाषा हैं। संस्कृत में भी शब्दों के अन्दर परिवर्तन होता है, जैसे - दैविक, नैतिक, पपाठ, जगाम, ममार आदि, अतः कुछ विद्वान् इस विभाजन को उचित नहीं समझते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो अरबी और संस्कृत के शब्द- निर्माण में कुछ मौलिक अन्तर है। अरबी में क्रिया के बीच में सम्बन्ध-तत्त्वों को जोड़ा जाता है, संस्कृत में सम्बन्ध तत्त्वों को अन्त में जोड़ा जाता है । सम्बन्ध तत्त्वों के कारण संस्कृत में स्वर- परिवर्तन (गुण, वृद्धि आदि) होते हैं, परन्तु ये अरबी के तुल्य जोड़े नहीं जाते

हैं। सम्बन्धतत्त्व सुप्, तिङ् कृत्, तद्धित प्रत्यय आदि अन्त में ही जुड़ते हैं। अतः दोनों भाषाओं की प्रकृति में अन्तर होने के कारण तथा सुविधा के लिए ये भेद व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी हैं।

(क) अन्तर्मुखी श्लिष्ट (Internal Inflectional) – इस वर्ग की भाषाओं में अर्थतत्त्व के बीच में सम्बन्धतत्त्व जुड़ते हैं। ये सम्बन्धतत्त्व अर्थतत्त्व में दूध- पानी की तरह घुलमिल जाते हैं। इनसे विभिन्न अर्थों का बोध होता है। सेमेटिक और हैमेटिक परिवार की भाषाएँ इस वर्ग में आती हैं। अरबी इस वर्ग की प्रतिनिधि भाषा है। अरबी भाषा में

धातुएँ प्रायः तीन व्यंजनों वाली होती हैं। सम्बन्धतत्त्व प्रायः स्वर के रूप में होते हैं। कुछ स्थानों पर वर्ण (म, मु, य आदि) भी लगते हैं। उदाहरण के लिए अरबी की KTB (क त ब, लिखना) धातु दी जा रही है-

(१) 'क-त-ब' से किताब (लिखी गई पुस्तक), कुतुब (पुस्तकें), (लिखने वाला), मकतब (स्कूल, लिखना सिखाने का स्थान), मकातिब (स्कूल का बहु०), कुतुबा (लेख), मकतूब (लिखित), मकतूबात (लिखित का बहुवचन), किताबत (लिखना) ।

कुछ अन्य उदाहरण ये हैं

(२) 'क-त-ल' (मारना) – कत्ल (मारना), कातिल (मारने वाला), कातिला (मारने वाली), मकतल (मारने की जगह), किताल (युद्ध), मकतूल (मरने वाला) कतील (जिसे मारा गया) ।

३) 'स-ल-म' (मानना, सिर झुकाना)- सलीम (साफ दिल, अच्छा), सलाम (प्रणाम), मुस्लिम (मानने वाला, आस्तिक), इस्लाम (मान लेना, आस्तिकता), मुसल्लम (माना हुआ), सालिम (पूरा) ।

(४) 'स-ज-द' (पूजा करना)- मसजिद (पूजास्थान), सजदा (पूजा करना), साजिद (पूजक), साजिदा (पूजा करनेवाली), सज्जादा (पूजा का आसन)

(५) 'म-ल- क' – मालिक (स्वामी)- मुल्क (देश), मलिका (रानी), मिल्कियत (स्वमित्व), इम्लाक (सम्पत्ति)

(६) 'ज़-ल-म' – ज़ालिम (अत्याचारी) – जुल्म (अत्याचार), मज़लूम (जिस पर अत्याचार किया जाए) ।

(७) 'त-ल-ब' (चाहना) – तालिब (इच्छुक), तालिबा (इच्छुक, छात्रा), तलबा (विद्यार्थी, बहु०), तलब (ढूँढ़ना), मुतल्लब (अर्थ)

इसके दो भेद किए हैं-

(१) संयोगात्मक (Synthetic) – इसका उदाहरण अरबी भाषा है। इसमें शब्दों में अलग से सहायक सम्बन्धतत्त्व (बहुवचन आदि) लगाने की आवश्यकता नहीं होती है।

(२) वियोगात्मक (Analytic) – इसका उदाहरण 'हिब्रू भाषा है। इसमें शब्दों के बाद सम्बन्धतत्त्व (बहुवचन आदि) अलग से लगाए जाते हैं।

(ख) बहिर्मुखी श्लिष्ट (External Inflectional) – इस वर्ग की भाषाओं में प्रत्यय (सम्बन्धतत्त्व) प्रकृति (अर्थतत्त्व) के बाद में या अन्त में जुड़ते हैं । सम्बन्धतत्त्व के जुड़ने पर अर्थतत्त्व में कुछ परिवर्तन (गुण, वृद्धि, दीर्घ, संप्रसारण आदि) भी होते हैं। प्रत्यय बाहर जुड़ने के कारण इसे External (बाह्य) Inflectional (प्रत्यय या विभक्ति-युक्त) कहते हैं । भारोपीय परिवार की संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता, अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाएँ इसी वर्ग में आती हैं।

इसके भी दो भेद किए जाते हैं-

(१) संयोगात्मक (Synthetic) — संयोगात्मक भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व अर्थतत्त्व (प्रकृति, शब्द या धातु) के बाद में लगते हैं और प्रकृति + प्रत्यय = शब्दरूप, धातुरूप बनते हैं। सम्वन्धतत्त्व अर्थतत्त्व के साथ घुलमिल जाता है। सम्वन्धतत्त्व के रूप में उपसर्ग, निपात आदि (सम्, प्र, आविस्, तिरस्, अन्तर् आदि) प्रकृति के पूर्व आते हैं। लगना भी बाह्य ही है। इसकी प्रतिनिधि भाषा संस्कृत है। ग्रीक, लैटिन, प्रकृति से पूर्व अवेस्ता, रूसी भी संयोगात्मक हैं। जैसे-

(१) गम् से गच्छति (गच्छ् + अ + ति, वह जाता है)। इसमें अ + ति सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) के द्वारा इतने अर्थ बताए जाते हैं – वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन, पुं० स्त्री० या नपुं० कोई भी लिंग।

(२) बालकम् —बालक + अम् (बालक को)। 'अम्' प्रत्यय से ये अर्थ निकलते हैं—कर्मकारक, एकवचन ।

(३) अनुभवति — अनु + भू + अति (वह अनुभव करता है)। इसमें उपसर्ग पहले लगा है।

संयोगात्मक होने से अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व मिश्रितरूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—कृ (करना) के कुछ रूप-

करोति (करता है), कुरु (करो), चकार (किया), अकार्षीत् (किया), कारयति (करवाता है), चिकीर्षति (करना चाहता है), चरीकर्ति (बार-बार करता है) ।

(२) वियोगात्मक (Analytic) – वियोगात्मक भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व अलग से लगाया जाता है। हिन्दी, अंग्रेजी आदि वियोगात्मक हो गई

हैं। संस्कृत संयोगात्मक थी, हिन्दी वियोगात्मक हो गई है। लैटिन संयोगात्मक थी, उससे विकसित फ्रेंच वियोगात्मक है । यही अंग्रेजी की स्थिति है। संस्कृत में कारकचिह्न (सुप्) और कालचिह्न (तिङ्) शब्द या धातु के साथ जुड़े होते थे। हिन्दी में कारकचिह्न (को, ने, से, का, पर आदि) और काल- चिह्न (ता है, था, थे, गा, गी, आदि) अलग रहते हैं। बालकम् = बालक को, पठति = पढ़ रहा है, पठिष्यति = पढ़ेगा, अपठत् = पढ़ रहा था । हिन्दी में इन स्थानों पर कारकों के लिए परसर्ग और कालों के लिए सहायक क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं।

हिन्दी के तुल्य अन्य भारतीय भाषाएँ बंगला, मराठी, गुजराती आदि भी वियोगात्मक हो गई हैं। अंग्रेजी, फ्रेंच वियोगात्मक हो गई हैं।

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ (Incorporative Languages)

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ उन्हें कहते हैं, जिनमें अर्थतत्त्व (प्रकृति) और सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) इस प्रकार जुड़े हुए होते हैं कि उनको अलग-अलग करना या अलग-अलग समझाना संभव नहीं है। इसलिए इनको प्रश्लिष्ट (प्र + प्रकर्षेण, अत्यधिक, श्लिष्ट - मिली हुई, चिपकी हुई) भाषाएँ कहा जाता है। इस संयोग को 'दधि घृत-न्याय'

(दही-घी के तुल्य मिश्रित) कहा जा सकता है। समन्वयात्मक होने के कारण इन्हें In- Corporative (In - अन्दर, corporative - समन्वयात्मक) भाषाएँ कहा गया है। इसका स्वरूप संस्कृत के इन उदाहरणों से समझा जा सकता है

१. आर्जव (सरलता) ऋजु + अ = आर्जव |

२. सौवर (स्वर - सम्बन्धी) - स्वर + अ = स्वर + अ = सौवर ।

३. चिकीर्षति (वह करना चाहता है)- कृ (करना) + स (इच्छा करना) + ति

४. दित्सति (वह देना चाहता है) –दा (देना) + स (इच्छा करना) + ति (प्र० १) जैसे इन उदाहरणों में प्रकृति-प्रत्यय स्पष्ट देखना-समझना संभव नहीं है,

इसी प्रकार प्रश्लिष्ट भाषाओं में प्रत्येक शब्द का कुछ अंश लेकर उसको एक शब्द (= एक वाक्य) का रूप दे दिया जाता है। इसको भी दो भागों में विभक्त किया गया है — (क) पूर्ण प्रश्लिष्ट, (ख) आंशिक प्रश्लिष्ट ।

(क) पूर्ण प्रश्लिष्ट (Completely Incorporative) इसमें अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व के पूर्ण प्रश्लेष (मेल) से पूरा वाक्य एक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। इसमें प्रत्येक शब्द का कुछ अंश ले लिया जाता है और कुछ अंश छोड़ दिया जाता है। इसको 'पूर्ण समासात्मक' भी कह सकते हैं। समस्त पद के तुल्य सारा वाक्य एक शब्द हो जाता है। दक्षिण अमेरिका की 'चेरोकी भाषा में ऐसे उदाहरण मिलते हैं –

'नाधोलिनिन' (लाओ नाव हमारे लिए, हमारे पास नाव लाओ)

नातेन = लाओ (क्रिया), अमोखोल = नाव (संज्ञा)

निन = हम (सर्वनाम, हमारे लिए)

(ख) आंशिक प्रश्लिष्ट (Partly Incorporative) इनमें सर्वनाम और क्रियाओं का पूर्ण मिश्रण होता है । क्रिया का स्वरूप नगण्य हो जाता है । इसको 'अंशत: समासात्मक' कह सकते हैं। इसमें केवल सर्वनाम और क्रिया का मिश्रण होता है। इसमें पूर्ण प्रश्लिष्ट के तुल्य संज्ञा, विशेषण आदि का भी मिश्रण नहीं होता है। पेरोनीज पर्वत के

पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली 'बास्क' भाषा में इसके उदाहरण मिलते हैं ।

जैसे-

१. हकार्त —— मैं ले जाता हूँ तुझे (मैं तुझे ले जाता हूँ

२. नका – तू ले जाता है मुझे (तू मुझे ले जाता है)

३. दकार्किओत — मैं ले जाता हूँ इसे उसतक (मैं इसे उसतक ले जाता हूँ)

आकृति की दृष्टि से संस्कृत और हिन्दी

आकृतिमूलकता की दृष्टि से विचार करते हुए ऊपर उल्लेख किया गया है कि 'संस्कृत' भाषा श्लिष्ट योगात्मक (बहिर्मुखी) (Synthetic Inflectional) है। भाषाओं की मूल प्रकृति संयोगात्मक या योगात्मक (Synthetic) थी । प्रकृति - प्रत्यय के समन्वित रूप से अर्थ का बोध कराया जाता था। यह प्रवृत्ति हमें संस्कृत के साथ ही ग्रीक, लैटिन आदि में भी मिलती है। विकास क्रम का नियम है— विकिरण (विस्तार, विश्लेषण, विभाजन)। इसी नियम के कारण संयोगात्मक भाषाएँ वियोगात्मकता की ओर अग्रसर हुईं। अर्थबोध

में सरलता लाने के लिए सम्बन्धतत्त्व को स्वतन्त्र रूप दिया गया। इससे संयोगात्मक (Synthetic) भाषाएँ वियोगात्मक (Analytic) हो गईं। संस्कृत कारक-चिह्न हिन्दी में वियोगात्मक होकर परसर्ग (को, ने, से आदि) हो गये । काल आदि के चिह्न सहायक क्रिया (है, हो, रहा, था, गा आदि) के रूप में प्रयुक्त होने लगे। इसी प्रकार अंग्रेजी भी श्लिष्ट वियोगात्मक (Analytic Inflectional) हो गई है। लैटिन से विकसित फ्रेंच में भी वियोगात्मकता पाई जाती है।

कुछ भाषाशास्त्रियों ने तर्क प्रस्तुत किया है कि भाषाएँ योगात्मक से वियोगात्मक होती हैं और वियोगात्मक से योगात्मक । यह कालचक्र चलता रहता है। भाषाओं के इतिहास पर दृष्टिपात न करने पर ऐसा कहा जा सकता है। वास्तविकता यह है कि संयोगात्मक से भाषाएँ वियोगात्मक होती हैं । वियोगात्मक से संयोगात्मक नहीं । विकास में विश्लेषण ही होगा, संश्लेषण नहीं। संयुक्त परिवार बिखर कर फिर एक होंगे। यह कल्पना करना निरर्थक एवं असार है कि बिखरे परिवार कभी फिर संयुक्त परिवार होंगे। इसी प्रकार भाषाएँ वियोगात्मक से संयोगात्मक होंगी, यह कल्पना केवल बुद्धिभ्रम है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण की उपयोगिता

आकृतिमूलक वर्गीकरण को भाषाशास्त्रियों ने प्रारम्भ में बहुत महत्त्व दिया, परन्तु अब इसका महत्त्व कम होता जा रहा है। इसकी उपयोगिता है-

१. विश्वभाषाओं के स्वरूप का ज्ञान । उनका विशिष्ट वर्गीकरण ।

२. विश्वभाषाओं की रचना का सरल और सुस्पष्ट ज्ञान ।

३. सम्बन्ध-तत्त्वों की प्रकृति (स्वभाव) का ज्ञान। उसके योगात्मक रूप का ज्ञान ।

४. विभिन्न भाषाओं के व्याकरण का ज्ञान ।

५. विभिन्न भाषाओं के व्याकरण में साम्य और वैषम्य का अध्ययन ।

६. विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन ।

आकृतिमूलक वर्गीकरण की समीक्षा

भाषाशास्त्रियों ने आकृतिमूलक वर्गीकरण की कड़ी आलोचना की है। उन्होंने ये न्यूनताएँ बताई हैं-

१. विश्व की भाषाओं को केवल ४ भागों में बाँटना युक्तिसंगत नहीं है। इसमें कुछ असंबद्ध भाषाओं को भी एक कोटि या वर्ग में रखा है। जैसे— संस्कृत और द्रविण भाषाएँ। ये सर्वथा असंबद्ध हैं। विभिन्न परिवारों की हैं।

२. इस वर्गीकरण की कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं है।

३. कोई भाषा किसी वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करती है। अन्य वर्गों के भी लक्षण उसमें मिलते हैं। संस्कृत में अश्लिष्ट, श्लिष्ट, प्रश्लिष्ट सभी के गुण मिलते हैं। जैसे - मधुरता, करोति, चिकीर्षति, आर्जव, वरीवर्ति आदि ।

४. विश्व की भाषाओं का अभी तक पूर्ण अध्ययन ही नहीं हुआ है, अतः यह वर्गीकरण अपूर्ण है।

५. हजारों भाषाओं को ४ बिरादरी से बैठा देना, कहाँ तक उचित है? कुछ एक-दूसरे के पास भी नहीं फटकतीं। रूपभेद, अर्थभेद आदि सभी भेद उनमें हैं ।